Chap-5

अध्याय पंचम

प्रसाद काव्य में कल्पना विधान

क्रिया दृष्टि से कल्पना के भेद

पुनर्निर्मायक कल्पना

रचनात्मक कल्पना

पुनर्निर्मायक कल्पना -

स्मृति निर्भर कल्पना

स्मृत्याभास निर्भर कल्पना

प्रत्यभिज्ञाश्रित कल्पना

रचनात्मक कल्पना -

विभावविधायक कल्पना

तद्भव कल्पना

अनुमानाश्रित कल्पना

सृजनात्मक कल्पना

मुक्तया दृष्टि की कल्पना

व्यापार दृष्टि से कल्पना के भेद

उत्पादक कल्पना

परिवर्तक कल्पना

आच्छादक कल्पना

उत्पादक कल्पना -

सावयव कल्पना

तिर्यक् कल्पना

सादृश्य -निर्भर कल्पना

उदात्त कल्पना

विभावनशील कल्पना

मानवीकरण-निर्भर कल्पना

अभिव्यक्ति के आधार पर कल्पना के भेद

प्रकृति सम्बंधी कल्पना

प्रेम और सौंदर्य सम्बंधी कल्पना

वायवी कल्पना

कलापक्ष से सम्बंधित कल्पना

प्रसाद काव्य में कल्पना विधान :

प्रसाद काव्य में कल्पना का विशेष महत्व है। इनका सम्पूर्ण काव्य कल्पना तत्व से ओत-प्रोत है। डॉ० रामेश्वरलाल खण्डेलवाल लिखते हैं - "प्रसाद ने अपने साहित्य के प्राय: सभी प्रकारों में (समीक्षात्मक निबंधों तथा भूमिकाओं को छोड़कर) कल्पना का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है।"[1] इन्होंने अपनी भावना और विचारों को पूर्णतया स्पष्ट और हृदयंगम बनाने के लिए कल्पना का ही सहारा लिया है। प्रसाद जी ने कल्पना के महत्व को स्वीकार करते हुए कहा है- 'दुख-दुग्ध जगत् और आनन्दपूर्ण स्वर्ग का एकीकरण साहित्य है ; इसीलिए असत्य अघटित घटना पर कल्पना की वाणी महत्वपूर्ण स्थान देती है, जो निजी सौंदर्य के कारण सत्य-पद पर प्रतिष्ठित होती है। इसमें विश्व मंगल की भावना ओत-प्रोत रहती है।"[2]

प्रसाद जी को किशोरावस्था से ही कल्पना से विशेष लगाव हो गया था। इन्होंने चित्राधार में 'कल्पना सुख' शीर्षक कविता में कल्पना का सुन्दर विवेचन किया है। कल्पना इनके लिए सुख प्रदान करनेवाली थी -

> हे कल्पना सुखदान। तुम मनुज जीवन प्राण।
> तुम विसद व्योम समान। तव अन्त नर नहिं जान।।
> प्रत्यक्ष, भावी, भूत। यह रंगे त्रिविध जु सूत।
> तब तानि प्रकृति सुतार। पट विनत सुचि संसार।।
> येहि विश्व को विश्राम। अरु कछुक जो है काम।
> सबको अहो तुम ठाम। तव मधुर ध्यान ललाम।।
> तब मधुर मूर्ति अतीत। है करत हीतल सीत।

व्याकुल नरन को मीत । तुम करहु कबहुँ अभीत ।।
शैशव मनोहर चित्र । तुम रचहुं कबहुँ विचित्र ।
मनु धूल धूसर बाल । पितु गोद खेलत हाल ।।
तव सुखद भावी मूर्ति । जेहि कहत आशा स्फूर्ति ।
मनु जहि रखे बिलमाय । जासों रहै सुख पाय ।।
नवजात शिशु को ध्यान । हुलसावही पितु प्रान ।
वह कमल- कोमल गात । जनु खेलिहैं कहितात ।।
कहुँ प्रेममय संसार । नव प्रेमिका को प्यार ।
कल्पित सुछाया चित्र । बहु रचहु तुम जग भिन्न ।।
तव शक्ति लहि अनमेल । कवि करत अद्भुत खेल ।
लहि तृण-सबिन्दु तुषार । गुहि देह मुक्ता हार ।।
जहँ सुन्दरी के नैन । वह रचत तहँ सुख देन ।
जलजात के जुग पात । तहँ नील मनि सुविभात ।।
येहि भाँति कौतुक केलि । सब नियति की अवहेलि ।
जो करत नर सुख मानि । सो तव कृपा को जानि ।।
तुम दान करि आनन्द । हिय को करहु सानन्द ।
नहि यह विषम संसार । तहँ कहाँ शान्ति बयार ।।[3]

इसके अतिरिक्त इनकी अन्य कृतियों में भी कल्पना के अद्वितीय उदाहरण देखने को मिलते हैं। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :-

शान्त हृदयाकाश स्वच्छ वसन्त- राका से भरा
कल्पना का कुसुम- कानन काम्य कलियों से भरा ।[4]

+ + +

यह भी नहीं जानता कोई वही महल, आशामय के
विशद कल्पना-मन्दिर-सा कब, चूर चूर हो जावेगा ।[५]

\+ \+ \+

कोमल कल्पना वाणी की वीणा में झंकार उत्पन्न करेगी ।[६]

प्रसाद जी की श्रेष्ठतम कृति 'कामायनी' उनकी काव्य कल्पना का सर्वोत्तम उदाहरण है। 'कामायनी' की कथा का आधार ऐतिहासिक है। इसकी कथा वेदों, पुराणों, ब्राह्मण ग्रंथों, उपनिषदों में बिखरी पड़ी है। प्रसाद जी कल्पना के सहारे ही इस मानव विकास की कथा को प्रस्तुत करने में सफल हो सके हैं। कवि के अपने ही शब्दों में -'कामायनी की कथा शृंखला मिलाने के लिए कहीं-कहीं थोड़ी- बहुत कल्पना को भी काम में ले आने का अधिकार मैं नहीं छोड़ सका हूँ।'[७] इस कल्पना के सहारे ही कवि मधुर जगत की सृष्टि करने में सफल होता है -

आह ! कल्पना का सुन्दर यह
जगत मधुर कितना होता !
सुख- स्वप्नों का दल छाया में
पुलकित हो जगता-सोता ।[८]

इस प्रकार से 'चित्राधार' से लेकर 'कामायनी' तक में उन्होंने कल्पना तत्व का सुन्दर प्रयोग किया है।

<u>प्रसाद काव्य में कल्पना के विविध रूप :</u>

क्रिया दृष्टि से कल्पना के मुख्य दो प्रकार हैं -

(क) पुनर्निमायक कल्पना
(ख) रचनात्मक कल्पना

(क) पुनर्निमायक कल्पना :

पुनर्निमायक कल्पना का काव्य में महत्वपूर्ण स्थान है। डॉ० कुमार विमल के अनुसार 'पुनर्निमायक कल्पना में विगत घटनाओं अथवा प्राप्त अनुभूतियों को स्मृति से उद्बुद्ध कर मानसिक बिंबों में बदला जाता है और उनका कलात्मक प्रेषण किया जाता है।'[६]

इस कल्पना के तीन भेद हैं -
(१) स्मृति-निर्भर कल्पना
(२) स्मृत्याभास-निर्भर कल्पना
(३) प्रत्यभिज्ञाश्रित कल्पना

(१) स्मृति-निर्भर कल्पना :

पुनर्निमायक कल्पना का प्रथम भेद स्मृति-निर्भर कल्पना है। स्मृति-निर्भर कल्पना वह कल्पना है जिसमें कवि विगत घटनाओं और अनुभवों की स्मृति के आधार पर रमणीय बिंबों की सृष्टि करता है और उन्हें कलात्मक ढंग से अभिव्यक्त करता है। प्रसाद जी के काव्य में इस प्रकार की कल्पना के उदाहरण देखने को मिलते हैं -

आह रे, वह अधीर यौवन !
मत्त-मारुत पर चढ़ उद्भ्रांत,
बरसने ज्यों मदिरा अश्रांत -
सिंधु बेला-सी घन मंडली,
अखिल किरनों को ढँककर चली,

भावना के निस्सीम गगन-
बुद्धि चपला का क्षण-नर्तन,
चूमने को अपना जीवन,
चला था वह अधीर यौवन,
आह रे, वह अधीर यौवन ।
अधर में वह अधरों की प्यास,
नयन में दर्शन का विश्वास,
धमनियों में आलिंगनमयी -
वेदना लिये व्यथायें नयी,
टूटते जिससे सब बंधन
सरस सीकर- से जीवन-कन,
बिखर भर देते अखिल भुवन,
वही पागल अधीर यौवन ।[१०]

इस उदाहरण में कवि ने अपने यौवन काल का वर्णन किया है । कवि अपनी युवावस्था के दिनों की स्मृति में खोया हुआ है । उसे वे दिन याद आते हैं जब उन्होंने युवावस्था में प्रवेश किया था और यौवन के आते ही उनमें जो परिवर्तन आये थे उन सबका कवि यहाँ स्मरण करता है ।

एक अन्य उदाहरण द्रष्टव्य है -

वे कुछ दिन कितने सुंदर थे ?
जब सावन-घन-सघन बरसते -
इन आँखों की छाया -भर थे ।
सुरधनु रंजित नव-जलधर से -

भरे, क्षितिज व्यापी अंबर से,
मिले चूमते जब सरिता के,
हरित कूल युग मधुर अधर थे ।
प्राण पपीहा के स्वर वाली -
बरस रही थी जब हरियाली -
रस जलकन मालती- मुकुल से -
जो मदमदाते गंध विधुर थे ।
चित्र खींचती थी जब चपला,
नील मेघ-पट पर वह विरला,
मेरी जीवन-स्मृति के जिसमें -
खिल उठते वे रूप मधुर थे ।[११]

कवि अपने अतीत के मधुर दिनों का स्मरण करता है, जिनकी अवधि बहुत ही कम थी परन्तु उन दिनों का अमिट प्रभाव कवि के जीवन पर पड़ा है। क्योंकि वह दिन अनेक प्रकार के सुखों से युक्त थे । उन क्षणों की केवल स्मृति ही शेष रह गयी है ।

यह स्मृतियाँ कवि की अपनी व्यक्तिगत अनुभूतियाँ हैं, कवि ने स्वयं इन सबको अनुभव किया है । इसलिए यह उदाहरण स्मृति-निर्भर कल्पना के वर्ग में आते हैं ।

(२) स्मृत्याभास-निर्भर कल्पना :

स्मृति-निर्भर कल्पना का आधार व्यक्तिगत स्मृति होती है । कवि ने स्वयं जीवन में उसे अनुभव किया होता है । परन्तु स्मृत्याभास-निर्भर कल्पना भिन्न

प्रकार की होती है। यह अन्य पूर्ववर्ती कवियों, लेखकों और इतिहासकारों के वर्णन के आधार पर उत्पन्न होती है। आचार्य शुक्ल जी के मतानुसार -'स्मृत्याभास कल्पना में पहले पढ़ी या सुनी बातों के आधार पर अथवा अतीत का कोई अवशेष देखकर हम नूतन मूर्ति- विधान करने लगते हैं। यह कल्पना अधिक मार्मिक होती है। क्योंकि उसका आधार सत्य होता है। इतिहास में पढ़ी घटना या दृश्य के ब्यौरों को मन में लाना और उनमें लीन हो जाना, किसी ऐतिहासिक खण्डहर को देख उस स्थल पर घटित प्राचीन घटना और उससे सम्बद्ध व्यक्तियों के बीच पहुँचकर तद्रूप हो जाना स्मृत्याभास कल्पना के द्वारा ही संभव है।'[१२] प्रसाद जी के काव्य में इस प्रकार की कल्पना के सुन्दर उदाहरण प्राप्त होते हैं -

अरी वरूणा की शांत कछार !
तपस्वी के विराग की प्यार !
सतत व्याकुलता के विश्राम, अरे ऋषियों के कानन कुंज !
जगत नश्वरता से लघु त्राण, लता, पादप, सुमनों के पुंज !
तुम्हारी कुटिया में चुपचाप, चल रहा था उज्ज्वल व्यापार !
स्वर्ग की वसुधा से शुचिसंधि, गूंजता था जिससे संसार
अरी वरूणा की शांत कछार !
तपस्वी के विराग की प्यार !
तुम्हारी कुंजों में तल्लीन, दर्शनों के होते थे वाद।
देवताओं के प्रादुभाव, स्वर्ग के स्वप्नों के संवाद।
स्निग्ध तरू की छाया में बैठ, परिषदें करती थीं सुविचार -
भाग कितना लेगा मस्तिष्क, हृदय का कितना है अधिकार ?[१३]

प्रस्तुत उदाहरण का आधार ऐतिहासिक विषय है। कवि उस पवित्र स्थान

उपस्थित होता है। किसी व्यक्ति को सामने देख उससे सम्बद्ध बहुत सी प्राचीन बातें स्मरण हो आती हैं और हमारा मन उन बीती बातों में डूबने- उतराने लगता है। स्पष्ट है कि स्मृति पर अधिष्ठित कल्पना ही हमें उस बीते युग में ले जाती है और हममें रस संचार करती है, पर यहाँ भी रसावस्था को प्राप्त करने के लिए अपने व्यक्तित्व का परिहार करना पड़ता है, निजी सुख-दुःख की भावना से ऊपर उठना होता है।"[१५]

प्रसाद जी की 'अरी वरूणा की शांत कछार' प्रत्यभिज्ञाश्रित कल्पना का ही सुन्दर उदाहरण है।

(ख) रचनात्मक कल्पना :

रचनात्मक कल्पना भी काव्य में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। यह कल्पना पूर्वानुभूत वस्तुओं का नये ढंग से सृजन करती है तथा इस प्रकार की कल्पना में कलात्मकता अधिक होती है। कवि अपनी असंख्य अनुभूतियों में से कुछ का चयन करके नवीन बिंबों का निर्माण करता है।

रचनात्मक कल्पना के कई भेद हैं -

(१) विभाव-विधायक कल्पना
(२) तद्भव कल्पना
(३) अनुमानाश्रित कल्पना
(४) सृजनात्मक कल्पना
(५) मुक्तयादृच्छिकी कल्पना

(१) विभाव-विधायक कल्पना :

विभाव-विधायक कल्पना में आलम्बन का बहुत ही कलात्मक अंकन किया

जाता है। यह कल्पना सहृदयों के लिए सामान्य आलम्बन खड़ा कर देती है। डॉ० शान्तिस्वरूप गुप्त इस कल्पना के विषय में लिखते हैं - `जो कल्पना भाव का सामान्य आलम्बन प्रस्तुत करती है, सहृदयों को आश्रय की अनुकूल भूमिका रखती है, विभाव का सम्यक स्थापन करती है, उसे विभाव-विधायक कल्पना कहते हैं।[१६] प्रसाद जी के काव्य में इस प्रकार की कल्पना के सुन्दर उदाहरण देखने को मिलते हैं। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं -

हिलते द्रुम-दल कल किसलय
देते गलबाँहीं डाली
फूलों का चुम्बन, छिड़ती-
मधुपों की निराली।[१७]

यहाँ कवि ने प्रकृति के प्रात:कालीन वातावरण का आलम्बन रूप में चित्रण किया है।

इसी प्रकार `कामायनी` में हिमालय का आलम्बन रूप में चित्रण अतीव सुन्दर है -

उस असीम नीले अंचल में
देख किसी की मृदु मुसक्यान,
मानों हँसी हिमालय की है
फूट चली करती कल गान।[१८]

इसी प्रकार मधुर रात्रि का भी इसी रूप में चित्रण देखिए -

कोमल कुसुमों की मधुर रात।
शशि-शतदल का यह सुख विकास,
जिसमें निर्मल हो रहा हास,
उसकी साँसों का मलय वात।[१६]

(२) तद्‌भव कल्पना :

जहाँ एक कल्पना उत्तरवर्तिनी अनेक कल्पनाओं को जन्म देती है वहाँ तद्‌भव कल्पना होती है अर्थात् एक कल्पना के उदित होते ही एक के बाद एक कल्पना उदित होती चली जाये । साँग रूपकों, ऊहाओं, मालोपमाओं और एकावली अलंकारों के स्रष्टा कवि इसी तद्‌भव कल्पना का सहारा लेते हैं । प्रसाद काव्य में भी कहीं- कहीं इस प्रकार की कल्पना के उदाहरण मिल जाते हैं -

घन में सुन्दर बिजली- सी
बिजली में चपल चमक- सी
आँखों में काली पुतली
पुतली में श्याम फलक सी ।[२०]

(३) अनुमानाश्रित कल्पना :

अनुमान इस कल्पना का मुख्य आधार होता है । कुछ वस्तुएँ ऐसी भी होती हैं जो इन्द्रिय-ग्राह्य नहीं होती, तब वहाँ पर अनुमान का सहारा लिया जाता है । कल्पना में जब इस प्रकार के अनुमान का आश्रय लिया जाता है तब वह अनुमानाश्रित कल्पना कहलाती है ।

प्रसाद जी के काव्य में भी अनुमानाश्रित कल्पना के रमणीय उदाहरण भी कहीं- कहीं मिल जाते हैं । `कामायनी` का एक उदाहरण प्रस्तुत है -

चंचल किशोर सुन्दरता की
          मैं करती रहती रखवाली
मैं वह हलकी-सी मसलन हूँ
          जो बनती कानों की लाली ।[२१]

(४) सर्जनात्मक कल्पना :

सर्जनात्मक कल्पना में स्मृति का विशेष महत्व नहीं होता । इस प्रकार की कल्पना में दो या दो से अधिक वस्तुओं के बीच नया सम्बन्ध स्थापित किया जाता है । प्रसाद जी की निम्न पंक्तियाँ इसी सर्जनात्मक कल्पना का रमणीय रूप हैं -

किरण ! तुम क्यों बिखरी हो आज,
रँगी हो तुम किसके अनुराग,
स्वर्ण सरसिज किंजल्क समान,
उड़ाती हो परमाणु पराग ।[२२]

(५) मुक्तयादृच्छिकी कल्पना :

इस प्रकार की कल्पना में ऊँची उड़ान अधिक होती है जबकि केन्द्रगामिता की कमी रहती है । डॉ० शान्तिस्वरूप गुप्त लिखते हैं - 'इसमें कवि अपनी रुचि के अनुसार उपमानों और अप्रस्तुतों को एकत्र कर देता है, भले ही उनका वर्ण्य-वस्तु की यथार्थवादिता से कोई सम्बंध न हो । इस कल्पना में डूबा हुआ कवि भावुकतावश प्रलाप-सा करता दृष्टिगत होता है ।'[२३]

प्रसाद जी ने इस कल्पना का प्रयोग इस प्रकार से किया है -

चंचला स्नान कर आवे
चंद्रिका पर्व में जैसी
उस पावन तन की शोभा
आलोक मधुर थी ऐसी ।[२४]

व्यापार की दृष्टि से भी कल्पना को वर्गीकृत किया जा सकता है। इस आधार पर कल्पना के तीन प्रकार हैं - उत्पादक कल्पना, परिवर्तक कल्पना और आच्छादक कल्पना। परिवर्तक कल्पना में कवि किसी दूसरे कवि की कल्पना को उलट-पुलट कर रख देता है। इस परिवर्तक कल्पना के विकसित रूप को आच्छादक कल्पना कहकर सम्बोधित किया जाता है। इस कल्पना में कवि किसी दूसरे की कल्पना को इस प्रकार आच्छादित कर देता है कि इस बात का ज्ञान ही नहीं होता कि यह अपहृत कल्पना है। प्रसाद जी के काव्य में इस प्रकार की कल्पना के उदाहरण नहीं मिलते। इनमें उत्पादक कल्पना ही सबसे महत्वपूर्ण है। उत्पादक कल्पना मौलिकता से पूर्णतया ओत-प्रोत रहती है तथा इसे कई नामों से पुकारा जाता है जैसे- रमणीय कल्पना, विदग्ध कल्पना, चित्रप्रगल्भ कल्पना इत्यादि। प्रसादजी का 'लहर' काव्य इस कल्पना से पूर्णतया ओतप्रोत है, इस उत्पादक कल्पना के कई भेद हैं -

(१) सावयव कल्पना

(२) सादृश्य-निर्भर कल्पना

(३) उदात्त कल्पना

(४) विभावनशील कल्पना

(५) तिर्यक् कल्पना

(६) मानवीकरण-निर्भर कल्पना

(१) सावयव कल्पना :

सावयव कल्पना में वर्णित या कही हुई बातें श्रृंखला की कड़ी के समान एक दूसरे से जुड़ी हुई होती हैं तथा उनकी अर्थवत्ता भी एक दूसरे पर आश्रित होती है। प्रसाद जी की निम्न पंक्तियाँ सावयव कल्पना का सुन्दर उदाहरण है -

पतझड़ था, झाड़ खड़े थे
सूखी सी फुलवारी में
किसलय नव कुसुम बिछाकर
आये तुम इस क्यारी में । [२५]

इस उदाहरण में सूखी फुलवारी के सभी अंगों जैसे- पतझड़, झाड़, किसलय, कुसुम और क्यारी का विवेचन करते हुए बिंब को परिपूर्ण बनाया गया है ।

(२) सादृश्य-निर्भर कल्पना :

सादृश्य-निर्भर कल्पना में कवि रूप-साम्य रखने वाले कुछ दूरवर्ती अप्रस्तुतों का बिम्बानुबिंब विधान करता है । प्रस्तुत और अप्रस्तुत में रूप-साम्य, वर्ण-साम्य, गुण-साम्य, क्रिया साम्य और धर्म-साम्य के आधार पर सादृश्य की स्थापना करता है । प्रसाद जी के काव्य में इस प्रकार की कल्पना का वैभव भी देखा जा सकता है -

रजत कुसुम के नव पराग-सी
उड़ा न दे तू इतनी धूल ;
इस ज्योत्स्ना की, अरी बावली
तू इसमें जावेगी भूल । [२६]

इस प्रकार एक अन्य उदाहरण में भी सादृश्य-निर्भर कल्पना के ही दर्शन होते हैं -

आकाश -सरोवर का मराल,
कितना सुन्दर कितना विशाल । [२७]

प्रथम उदाहरण में प्रसाद जी ने चाँद को `रजत-कुसुम` और चाँदनी को `रजत-कुसुम का पराग` बताया है । इसी प्रकार द्वितिय उदाहरण में चाँद को `अवकाश सरोवर का मराल` कहते हैं ।

(३) उदात्त कल्पना :

इस प्रकार की कल्पना में आलम्बन अपनी विशालता और सूक्ष्मता के कारण आश्रय के चित्त को पराभूत कर देता है । इस कल्पना का दूसरा नाम विराट् कल्पना है । प्रसाद जी की निम्न पंक्तियाँ इसी उदात्त कल्पना का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करती हैं -

बन गया तमस था अलक जाल,
सर्वाङ्ग ज्योतिमय था विशाल ;
अन्तर्निनाद ध्वनि से पूरित,
थी शून्य-भेदिनी सत्ता चित् ;
नटराज स्वयं थे नृत्य निरत,
था अन्तरिक्ष प्रहसित मुखरित ;
स्वर लय होकर दे रहे ताल,
थे लुप्त हो रहे दिशाकाल ।
लीला का स्पन्दित आल्हाद,
वह प्रभा-पुंज चितिमय प्रसाद ;
आनन्द पूर्ण ताण्डव सुन्दर,
झरते थे उज्ज्वल श्रम सीकर ;
बनते तारा, हिमकर दिनकर
उड़ रहे धूलिकण-से भूधर ;
संहार सृजन से युगल पाद-
गतिशील, अनाहत हुआ नाद । [२८]

(४) विभावनशील कल्पना :

जिसमें अकारण से कार्य की उत्पत्ति का विशिष्ट भावन किया जाता है उसे विभावनशील कल्पना कहते हैं। प्रसाद जी की निम्न पंक्तियाँ विभावनशील कल्पना का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करती हैं -

कहता दिगंत से मलय पवन
प्राची की लाज भरी चितवन-
है रात घूम आई मधुवन,
यह आलस की अँगराई है। [२९]

इस उदाहरण में रात भर मधुवन में घूमते रहने को आलस की अँगराई का कारण बताया है। इसी कारण यहाँ पर विभावनशील कल्पना है।

(५) तिर्यक् कल्पना :

यह एक प्रकार की वक्र कल्पना होती है तथा तिरछी काट करती है। इसके कारण ही कविता एक अनबूझ पहेली बन जाती है। इस कल्पना का अर्थ न तो पूर्णतया स्पष्ट होता है और न ही गूढ़। निम्नलिखित उदाहरण में कवि ने तिर्यक् कल्पना के सहारे ही यह स्पष्ट किया है कि प्रेम की प्रतिमा की प्राप्ति ही उसके जीवन की अभिलाषा है -

कल्पना अखिल जीवन की
किरनों से दृग तारा की
अभिषेक करे प्रतिनिधि बन
आलोकमयी धारा की। [३०]

इसी प्रकार से एक अन्य उदाहरण में भी तिर्यक् कल्पना के ही दर्शन

होते हैं -

सुख तृप्त-हृदय कोने को
ढकती तम- श्यामल छाया
मधु स्वप्निल ताराओं की
जब चलती अभिनय माया ।[३१]

(६) मानवीकरण -निर्भर कल्पना :

मानवीकरण-निर्भर कल्पना में प्रकृति को मानवीय भावों और व्यापारों से संयुक्त कर दिया जाता है । प्रकृति भी मनुष्य की भाँति व्यवहार करती दिखायी देती है । प्रकृति की सभी गतिविधियाँ भी मानवोचित सी प्रतीत होने लगती हैं । प्रसाद जी का तो सम्पूर्ण काव्य इस कल्पना से भरा पड़ा है । उन्होंने प्रकृति का अनेक मानवीय रूपों में चित्रण किया है -

निम्न उदाहरण में प्रसाद जी ने `धरा` का नववधू के रूप में चित्रण किया है । प्रलय रात्रि के घोर अंधकार में अनेक प्रकार की कठिनाईयों का सामना करने के पश्चात प्रात:काल में जल में से निकली हुई धरा समुद्र पर बैठी हुई ऐसे प्रतीत होती है मानों कोई नववधू रात्रि में प्रियतम द्वारा किए गए निर्दयतापूर्वक प्रेम व्यापार का स्मरण करती हुई प्रात:काल में अपना मान प्रकट करने हेतु रूठ कर बहुत ही संकुचित होकर अपनी शैय्या पर बैठी हुई है ।

सिन्धु सेज पर धरा वधू अब
तनिक संकुचित बैठी सी ;
प्रलय निशा की हलचल स्मृति में
मान किये सी ऐंठी सी ।[३२]

चाँदनी नारी की भाँति शिथिल और आलस्यपूर्ण होकर मिलन कुंज में सोती हुई दिखायी देती है -

सोयेगी कभी न वैसी
फिर मिलन कुंज में मेरे
चाँदनी शिथिल अलसाई
सुख के सपनों से मेरे।[33]

कैलाश पर्वत को समाधिस्थ योगी के रूप में चित्रित किया गया है -

दिनकर गिरि के पीछे अब
हिमकर था चढ़ा गगन में ;
कैलाश प्रदोष प्रभा में
स्थिर बैठा किसी लगन में।[34]

अभिव्यक्ति के आधार पर कल्पना को चार भागों में विभाजित किया जा सकता है -

(१) प्रकृति सम्बंधी कल्पना
(२) प्रेम और सौंदर्य सम्बंधी कल्पना
(३) वायवी कल्पना
(४) कलापक्ष से सम्बंधित कल्पना

(१) प्रकृति सम्बंधी कल्पना :

इसमें प्रकृति ही कवि कल्पना का मुख्य आधार होती है। प्रकृति हर क्षेत्र में कल्पना के साथ रहती है। चाहे वह प्रेम और सौंदर्य का क्षेत्र हो या चिन्तन और चमत्कार का। वह कहीं भी कल्पना से अलग नहीं होती। प्रसाद काव्य में

प्रकृति का महत्वपूर्ण स्थान है। प्रकृति के मनोरम चित्र उनके काव्य में बिखरे पड़े हैं। कवि कहीं झर-झर कर बहने वाले झरनों की कल्पना करता है तो कहीं कल-कल की ध्वनि से बहती सरिता का। इसके अतिरिक्त प्रसाद काव्य में विभिन्न ऋतुओं-प्रभात, संध्या और रात्रि के भी सुन्दर चित्र प्रस्तुत किए गए हैं। वन, पर्वत, नाले, सागर, लहरें, आकाश, नक्षत्र, बादल, चाँदनी, तारा, सूर्य, किरण आदि की अनगिनत कल्पनाएँ उन्होंने अपने काव्य में अंकित की हैं।

प्रसाद जी प्रभात के दृश्य को अपनी कल्पना द्वारा अत्यन्त सुन्दर रूप में प्रस्तुत करते हैं। प्रभात के आगमन के साथ ही पूर्व दिशा में लालिमा फैल जाती है। धीरे- धीरे सूर्य उदय होता है जिससे कमल खिल उठते हैं। पक्षी भी मधुर ध्वनि में कलरव करने लगते हैं। शीतल मन्द मधुर पवन भी चलने लगती है। इस प्रकार से वातावरण में एक नई स्फूर्ति भरी होती है। इन सभी विशेषताओं को निम्न उदाहरण में परिलक्षित किया जा सकता है —

प्राची में फैला मधुर राग
जिसके मण्डल में एक कमल खिल उठा सुनहला भर पराग
जिसके परिमल से व्याकुल हो श्यामल कलरव सब उठे जाग
आलोक रश्मि से बुने उषा अंचल में आन्दोलन अमन्द
करता प्रभात का मधुर पवन सब ओर बितरने को मरन्द।[३५]

इसी प्रकार कवि उषा की कल्पना पनघट पर पानी भरने वाली नारी में अर्थात् पनिहारिन के रूप में करता हुआ कहता है —

बीती विभावरी जाग री।
अंबर पनघट में डुबो रही-
तारा -घट ऊषा नागरी।[३६]

एक अन्य उदाहरण में भी कवि उषा की कल्पना तपस्विनी रूप में भी करता है —

आँखों से अलख जगाने को ;
यह आज भैरवी आई है ।
उषा-सी आँखों में कितनी,
मादकता भरी ललाई है ।[३७]

प्रसाद जी ने संध्याकाल का भी अत्यन्त भव्य चित्र अंकित किया है । वल्कल वस्त्र धारण करने वाली वनवासिनी बाला के रूप में संध्या का चित्रण कवि की मोहक कल्पना का ही परिचायक है —

संध्या समीप आयी थी
[illegible] उस सर के, वल्कल वसना ;
तारों से अलक गुँथी थी
पहने कदम्ब की रसना ।[३८]

सूर्यास्त के पश्चात् शीघ्र ही चारों तरफ अंधेरा ही अंधेरा फैल जाता है । सूर्य भी दिखायी नहीं देता । चारों ओर शान्ति व्याप्त हो जाती है । प्रसाद जी ने अपनी कल्पना के सहारे ही सूर्यास्त का अति सुन्दर चित्र अंकित किया है —

गिर रहा निस्तेज गोलक जलधि में असहाय ;
घन पटल में डूबता था किरण का समुदाय ।
कर्म का अवसाद दिन से कर रहा छल छन्द ;
मधुकरी का सुरस संचय हो चला अब बन्द ।
उठ रही थी कालिमा धूसर क्षितिज से दीन ;
भेंटता अन्तिम अरुण आलोक- वैभव हीन ।
यह दरिद्र मिलन रहा रच एक करुणा लोक ;
शोक भर निर्जन निलय से बिछुड़ते थे कोक ।[३९]

सूर्यास्त के पश्चात रजनी का श्यामल आवरण नाना रूपों को आच्छादित कर लेता है तथा सारा विश्व भी निद्रा में निमग्न हो जाता है। प्रकृति के इस दृश्य को सुन्दर एवं रमणीय बनाने के लिए कवि ने यहाँ बड़ी ही मार्मिक कल्पना की है —

विश्व कमल की मृदुल मधुकरी
रजनी तू किस कोने से -
आती चूम- चूम चल जाती
पढ़ी हुई किस टोने से। [४०]

प्रसाद जी ने रात्रि की शुक्लाभिसारिका नायिका के रूप में भी कल्पना की है जो अपने प्रिय से मिलने के लिए किसी संकेत स्थल पर आती है। इस स्थान पर आकर अपनी सखियों को मुस्करा कर कहीं बाहर ही रूक जाने का आग्रह करती है और स्वयं अकेली बैठकर अपना अवगुंठन उठाकर अपने प्रिय के आने की प्रतीक्षा करती है -

घूँघट उठा देख मुसक्याती
किसे ठिठकती-सी आती ;
विजन गगन में किसी भूल-सी
किसको स्मृति पथ में लाती। [४१]

बसन्त ऋतु के आते ही कोयल मतवाली हो जाती है और अलसाई हुई कलियाँ भी खिल उठती हैं। यहाँ पर कवि ने बसंत ऋतु के द्वारा यौवनावस्था की सुन्दर कल्पना की है -

क्या तुम्हें देखकर आते यों,
मतवाली कोयल बोली थी।

उस नीरवता में अलसाई
कलियों ने आँखें खोली थी ।[४२]

विभिन्न ऋतुओं में ग्रीष्म ऋतु का भी अपना ही महत्व है । ग्रीष्म ऋतु के आते ही लू के झोंके चलने लगते हैं । पेड़ों के पत्ते भी मुरझाकर पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं । प्रसाद जी ने निम्न पंक्तियों में ग्रीष्म ऋतु का ही चित्र अंकित किया है -

निर्जन कानन में तरुवर जो खड़े प्रेत-से रहते हैं
डाल हिलाकर हाथों से वे जीव पकड़ना चाहते हैं
देखो, वृक्ष शाल्मली का यह महा- भयावह कैसा है
आतप -भीत विहंगम-कुल का क्रन्दन इस पर कैसा है
लू के झोंके लगने से जब डाल-सहित यह हिलता है
कुम्भकर्ण-सा कोटर-मुख से अगणित जीव उगलता है ।
हरे- हरे पत्ते वृक्षों के तापित को मुरझाते हैं
देखादेखी सूख-सूखकर पृथ्वी पर गिर जाते हैं
धूल उड़ाता प्रबल प्रभंजन उनको साथ उड़ाता है
अपने खड़-खड़ शब्दों को भी उनके साथ बढ़ाता है ।[४३]

हिमालय की श्रेणियों का भी बहुत ही आकर्षक चित्र अंकित किया गया है । संध्या के समय रंग-बिरंगे बादलों के छा जाने पर हिमालय की ऊँची-ऊँची चोटियाँ ऐसी प्रतीत होती हैं मानों सुन्दर वस्त्र धारण किए हुए किसी सम्राट की सौंदर्यमयी रानियाँ हों । प्रसाद जी की भव्य कल्पना ही दृष्टिगोचर होती है --

संध्या घनमाला की सुन्दर
ओढ़े रंग-बिरंगी छींट,
गगन -चुम्बिनी शैल- श्रेणियाँ
पहने हुए तुषार किरीट ।[४४]

इसी प्रकार से कैलाश पर्वत की कल्पना एक समाधिस्थ योगी के रूप में की गयी है । सूर्य पर्वत के पीछे छिप गया है और आकाश में चन्द्रमा उदित हो गया है । उस समय कैलाश पर्वत ऐसा प्रतीत होता है मानों परमतत्व के चिंतन में योगी समाधि लगाकर बैठा है -

दिनकर गिरि के पीछे अब,
हिमकर था चढ़ा गगन में ;
कैलाश प्रदोष प्रभा में
स्थिर बैठा किसी लगन में ।[४५]

कवि ने सागर का भी अत्यन्त भव्य चित्र अंकित किया है । सागर में लहरें उठ रही हैं । कवि कल्पना करता है मानों ये लहरें उसके वस्त्र हैं । लहरें उठती और आपस में टकराती हैं जिसके कारण अनेक जलकण उड़ रहे हैं जिन्हें देखकर कवि कल्पना करता है यह जलकण मानों उसके आँसू हैं । वह सागर की मनोदशा का चित्रण करते हुए कल्पना करता है मानों सागर के हृदय को किसी ने चोट पहुँचायी है और सागर अपनी आँखों से छलकते हुए आँसुओं को पोंछ रहा है -

लहरों में यह क्रीड़ा-चंचल
सागर का उद्वेलित अंचल
है पोंछ रहा आँखें छल-छल,
किसने यह चोट लगाई है ?[४६]

कलियों का चित्रण मुग्धानायिका के रूप में करता है। मधुर चाँदनी रात में कलियाँ संकुचित दिखायी पड़ रही हैं। इन कलियों पर परिमल का भीना-सा आवरण पड़ा हुआ है जिन्हें देखकर कवि कल्पना करता है मानों ये कलियाँ मुग्धाएँ हैं जो लज्जा के कारण घूँघट काढ़े हुए धीरे- धीरे बात कर रही हैं -

कोमल कुसुमों की मधुर रात ।
वह लाज भरी कलियाँ अनन्त,
परिमल-घूँघट ढँक रहा दंत,
कँप-कँप चुप-चुप कर रही बात । [४७]

चित्र को और भी अधिक सुन्दर एवं प्राणवान बनाने के लिए प्रसाद जी ने अनेक स्थलों पर ध्वनि वाचक शब्दों के आधार पर भी रमणीय दृश्यों को अंकित किया है। उदाहरण देखिए -

कँटीला था गुलाब केली,
उठी चटचटा उसी की कली ।। [४८]

+ + +

निर्झर -सा झिर- झिर करता
माधवी- कुंज छाया में। [४९]

+ + +

रजनी की लाज समेटो तो,
कलरव से उठ कर भेंटो तो,
अरुणाचल में चल रही बात । [५०]

+ + +

विस्तृत तरू-शाखाओं के ही बीच में
छोटी-सी सरिता थी, जल भी स्वच्छ था ;
कल- कल ध्वनि भी निकल रही संगीत-सी
व्याकुल को आश्वासन- सा देती हुई । [५१]

चटचटा, फिर-फिर, कलरव और कल-कल आदि शब्द कवि की ध्वनि कल्पना के सुन्दर उदाहरण हैं ।

(२) प्रेम और सौंदर्य सम्बंधी कल्पना :

प्रसाद जी प्रेम और सौंदर्य के कवि हैं । प्रेम और सौंदर्य की अनगिनत कल्पनाएँ उनके काव्य में परिलक्षित होती हैं -

प्रेम सम्बंधी कल्पना :

प्रसाद जी ने प्रेम को जीवन का बहुत ही पवित्र और आलोकमयी तत्व माना है । उनका विश्वास है कि प्रेम से प्रेरणा प्राप्त करने के पश्चात् सभी कर्म कोमल, उज्ज्वल और उदार बन जाते हैं । [५२] प्रेम मिलता नहीं है अपितु प्रेम का तो दान किया जाता है और प्रेम का दान ही सच्चा दान है । [५३] प्रेम में तो प्राय: दिया ही जाता है । उस देने के बदले कुछ लिया नहीं जाता । इस प्रकार प्रेम में त्याग का विशेष महत्व होता है । कवि के मतानुसार जीवन में जब प्रेम की लालिमा फैल जाती है तब प्रेम के आलोक में मनुष्य को एक नई दृष्टि प्राप्त होती है तथा वह फिर से कर्मण्य पथ का अनुगामी हो जाता है । इस प्रेम के द्वारा ही पाप पूर्ण भावनाएँ पुण्य की भावनाओं में परिवर्तित हो जाती हैं । [५४] प्रेमपथिक, झरना, आँसू, लहर और कामायनी आदि में प्रसाद जी ने प्रेम -भावना का बहुत ही आकर्षक चित्रण प्रस्तुत किया है ।

प्रसाद जी ने सागर को प्रिय और नदी को प्रेयसी रूप में चित्रित किया है। प्रिय और प्रेयसी प्राय: एक दूसरे से मिलने के लिए व्याकुल होते हैं। निम्न उदाहरण में नदी अपने प्रेमी सागर से मिलने के लिए व्याकुल है। नदी की इस मिलनातुरता के द्वारा कवि प्रसाद जी प्रेयसी का अपने प्रिय से मिलने की जो आतुरता होती है उसकी सुन्दर कल्पना की है -

आकुल अकूल बनने आती,
अब तक तो है वह आती,
देवलोक की अमृत कथा की माया -
छोड़ हरित कानन की आलस छाया -
विश्राम माँगती अपना।
जिसका देखा था सपना -
निस्सीम व्योम तल नील अंक में,
अरूण ज्योति की फील बनेगी कब सलील ?
है सागर संगम अरूण नील।[55]

कवि अपने प्रिय के मुख की कल्पना चन्द्रमा रूप में करता हुआ कहता है जिस प्रकार चन्द्रमा के निकलने पर अंधकार समाप्त हो जाता है। उसी प्रकार अगर प्रियतमा का चन्द्र रूपी मुख दिख जाये तो उसका निराशपूर्ण जीवन आनंदित हो उठे -

जग की सजल कालिमा रजनी में मुखचंद्र दिखा जाओ।
हृदय-अँधेरी फोली इसमें ज्योति भीख देने आओ।
प्राणों की व्याकुल पुकार पर एक मींड ठहरा जाओ।
प्रेम-वेणु की स्वर -लहरी में जीवन-गीत सुना जाओ।[56]

प्रिय अपनी प्रियतमा से कहता है मेरा मन तुम्हारे चरणों को चूमने को कर रहा है परन्तु तुम उन्हीं चरणों को दबा-दबा कर व्यर्थ में कष्ट पहुँचा रही हो । यहाँ पर कवि कल्पना करता हुआ कहता है उन चरणों को दबाने से जो लालिमा उनमें दौड़ रही है, वह उषा के रूप में पूर्व दिशा में फैल चुकी है । यह लालिमा मानों तुम्हारे चरणों की वह धूल है जिससे वह अपने मस्तक का शृंगार करती है -

आह, चूम लूँ जिन चरणों को चाँप-चाँप कर उन्हें नहीं
दुख दो इतना, अरे अरुणिमा उषा-सी वह उधर बही ।
वसुधा चरण-चिन्ह सी बनकर यहीं पड़ी रह जावेगी ।
प्राची रज कुंकुम ले चाहे अपना भाल सजावेगी । [५७]

प्रेमी अपनी प्रेमिका की इन्तजार करता हुआ कहता है जब उसकी प्रिय आ जायेगी तब उसके संसार की पूर्व दिशा अनुरागपूर्ण हो जायेगी । जीवन में नई- नई आशाओं के उदित होते ही उसके लाल -लाल होठों पर हँसी नाच उठेगी और उल्लास उसके जीवन में पूर्ण रूप से व्याप्त हो जायेगा ।

जवा-कुसुम-सी उषा खिलेगी
मेरी लघु प्राची में,
हँसी भरे उस अरुण अधर का
राग रँगेगा दिन को । [५८]

कवि कल्पना करता है मानों वह अपनी प्रियतमा के साथ आलिंगनबद्ध हो । उसके सुगंधिपूर्ण मुख से छोड़ी हुई निश्वासें सिहरन पैदा कर रही हों ।

प्रियतमा के चुंबन से उसका हृदय उसी प्रकार खिल उठेगा जिस प्रकार सूर्य की किरणें पड़ते ही कमल खिल उठता है -

सिहर भरी कँपती आवेंगी
मलयानिल की लहरें,
चुम्बन लेकर और जगाकर-
मानस नयन नलिन को ।[५६]

प्रियतमा द्वारा अपनी प्रियतमा का हाथ अपने हाथ में लिये जाने पर प्रियतमा की जो दशा होती है उसकी बहुत ही सुन्दर कल्पना प्रसाद जी ने निम्न उदाहरण में की है। जब प्रियतम अपनी प्रेमिका का हाथ अपने हाथ में लेता है तो प्रियतमा का शरीर शिथिल पड़ने लगता है और हाथ की उंगलियाँ भी कँपने लगती हैं —

हाथ में हाथ लिया मैंने,
हुए वे सहसा शिथिल नितान्त ।
मलय ताड़ित किसलय कोमल
हिल उठी उँगली, देखा; भ्रान्त ।।[६०]

प्रसाद जी ने कामायनी की नायिका श्रद्धा की कल्पना बहुत दूर मधुर ध्वनि में बजने वाली वंशी के रूप में की है -

उठती हैं किरनों के ऊपर
कोमल किसलय की छाजन-सी ;
स्वर का मधु निस्वन रन्ध्रों में
जैसे कुछ दूर बजे बंसी ।[६१]

वियोग का भी अपना अलग ही महत्व होता है। वियोग की अग्नि में तपकर ही प्रेम सोने के समान उज्ज्वल हो जाता है। प्रसाद जी का `आँसू` तो विरह काव्य ही है। कवि विरही की व्यथा को दिखाने के लिए ही एक के बाद एक नई- नई कल्पनायें करता चला जाता है।

प्रेयसी की याद आते ही विरही की दशा बहुत ही करुण हो जाती है। इस स्थिति की सुन्दर कल्पना प्रसाद जी ने प्रस्तुत की है। विरही के हृदय में विरह की अनेक भावनायें उठती हैं जिन्हें देखकर कवि कल्पना करता है मानों उसके हृदय में ठण्डी अग्नि जल रही है। विरही के बहते आँसू मानों ईंधन हैं जो जलती हुई अग्नि को और भी भड़का रहे हैं —

शीतल ज्वाला जलती है
ईंधन होता दृग- जल का
यह व्यर्थ साँस चल- चलकर
करती है काम अनिल का।[६२]

आकाश में व्याप्त तारों को देखकर कवि कल्पना करता है मानों यह विरहाग्नि के धधकने से उसमें से उठनेवाली चिनगारियाँ हैं —

ये सब स्फुलिंग हैं मेरी
इस ज्वालामयी जलन के
कुछ शेष चिन्ह हैं केवल
मेरे उस महा मिलन के।[६३]

विरही के हृदय में अनेक स्मृतियों ने अपना अधिकार जमा लिया है। धीरे- धीरे यह स्मृतियाँ सघन होती गईं। कवि कल्पना करता हुआ कहता है जिस

तरह से आकाश में बादल एकत्रित होकर सघन हो जाते हैं तब वर्षा के रूप में पृथ्वी पर बरसते हैं । उसी प्रकार से विरही के जीवन में व्याप्त स्मृतियाँ सघन होकर आँसू के रूप में बरस रही हैं -

जो घनीभूत पीड़ा थी
मस्तक में स्मृति सी छाई
दुर्दिन में आँसू बनकर
वह आज बरसने आई ।[६४]

विरही रात भर अपनी प्रेयसी का इन्तजार करता रहा है । प्रेयसी के न आने पर रात भर उसने उसकी (प्रेयसी) याद में आँसू बहाये हैं । कवि कल्पना करता है प्रात:काल पृथ्वी पर फैली हुई हरियाली पर जो ओस की बूँदें पड़ी हुई हैं मानों वह विरही के आँसू हैं । सब कुछ लुट जाने पर बादल छूँछा हो जाता है प्रेयसी के न आने पर विरही की दशा की भी उसी रूप में कल्पना की है -

श्यामल अंचल धरणी का
भर मुक्ता आँसू कन से
छूँछा बादल बन आया
मैं प्रेम प्रभात गगन से ।[६५]

प्रसाद जी ने पीड़ा की कल्पना आकाश गंगा रूप में भी की है —

क्यों व्यथित व्योम-गंगा सी
छिटका कर दोनों छोरें
चेतना-तरंगिनी मेरी
लेती है मृदुल हिलोरें ।[६६]

सौन्दर्य कल्पना :

प्रसाद जी सौंदर्यवादी कवि हैं । उन्होंने सौंदर्य सम्बंधी अनेक कल्पनायें की हैं । प्रकृति सौंदर्य और मानवीय सौंदर्य से तो उनका काव्य पूर्णतया ओतप्रोत हैं । प्रकृति सौंदर्य की चर्चा तो पहले की जा चुकी है । अब हम मानवीय सौंदर्य पर विचार -विश्लेषण करेंगे ।

मानवीय सौंदर्य में भी नारी सौंदर्य ने उन्हें विशेष रूप से आकर्षित किया है । नारी के सौंदर्य को लेकर एक के बाद एक भव्य कल्पनायें उन्होंने अपने काव्य में की है ।

श्रद्धा के कोमल सुन्दर अंगों को देखकर कवि कल्पना करता है मानों नीले बादलों के वन में गुलाबी रंग का बहुत ही सुन्दर बिजली का फूल खिला हुआ है ।

नील परिधान बीच सुकुमार
खिल रहा मृदुल अधखुला अंग,
खिला हो ज्यों बिजली का फूल
मेघ-बन बीच गुलाबी रंग । [६७]

इसी प्रकार कवि श्रद्धा के मुख पर फैली हुई मुस्कान को देखकर कल्पना करता है जैसे प्रात:काल में तारों की गोद में मस्ती और लज्जा से ओतप्रोत होकर उषा की पहली उज्ज्वल किरण सुशोभित हो रही है -

उषा की पहिली लेखा कान्त ;
माधुरी से भीगी भर मोद ;
मद भरी जैसे उठे सलज्ज
भोर की तारक द्युति की गोद । [६८]

(३) वायवी कल्पना :

प्रसाद जी के काव्य में कहीं- कहीं ऐसे उदाहरण भी प्राप्त होते हैं जहाँ पर भाव और अनुभूति का कल्पना के साथ कोई सम्बन्ध नहीं रहता । कवि केवल कल्पना को ही अपनी अभिव्यक्ति का आधार बनाता है । चमत्कार प्रदर्शन हेतु तो इनका विशेष महत्व रहता है । परन्तु अर्थ की दृष्टि से बिल्कुल निर्जीव प्रतीत होते हैं । यह कल्पना मानस में किसी भी वस्तु को इस रूप में प्रस्तुत करती है कि इस बात का बोध होना मुश्किल हो जाता है कि वह सत्य है या असत्य ।

वायवी कल्पना के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं —

कुसुम कानन- अंचल में मन्द
पवन प्रेरित सौरभ साकार ;
रचित परमाणु पराग शरीर
खड़ा हो ले मधु का आधार ।[६९]

यहाँ पर प्रसाद जी ने श्रद्धा के रूप वर्णन का चित्र प्रस्तुत किया है । उन्होंने श्रद्धा को सौरभ की साकार मूर्ति बताते हुए श्रद्धा के शरीर को पुष्प रस में सानकर पराग के परमाणुओं द्वारा निर्मित बताया है ।

या कि, नव इन्द्र नील लघु श्रृंग,
फोड़कर धधक रही हो कान्ति ;
एक लघु ज्वालामुखी अचेत
माधवी रजनी में अश्रान्त ।[७०]

इस उदाहरण में प्रसाद जी श्रद्धा की नीली वेशभूषा और काले बालों की

तुलना 'नवइन्द्र नील लघु शृंग' से करते हैं और उसके मुख को धधकता ज्वालामुखी कहा है। प्रसाद जी की यह दोनों उपमायें बहुत ही विचित्र हैं इससे नारी के सौंदर्य युक्त मुख का कोई सुन्दर चित्र पाठकों के मानस में नहीं उभरता है।

किल-किल कर छाले फोड़े
मल-मल कर मृदुल चरण से
धुल- धुल कर वह रह जाते
आँसू करूणा के कण से।[७१]

यहाँ पर कवि ने विरही की दशा की सुन्दर कल्पना की है। कवि कहता है इसके हृदय में वियोगाग्नि के कारण छाले पड़ गये हैं प्रिय की स्मृतियों ने कवि के हृदय में प्रवेश करते ही अपने चरणों से मल-मल कर उन छालों को फोड़ दिया है। उन छालों के फूट जाने पर उनमें से जो पानी निकलता है वही उसकी आँखों में आँसू करूणा के कण के समान शेष रह गये हैं।

मानस का स्मृति-शतदल खिलता, झरने बिन्दु मरन्द घने,
मोती कठिन पारदर्शी ये, इनमें कितने चित्र बने।
आँसू सरल तरल विद्युत्कण, नयनालोक विरह तम में,
प्राण पथिक यह संबल लेकर लगा कल्पना-जग रचने।[७२]

कवि ने विरहिणी श्रद्धा के विरह व्यथित हृदय की दशा का चित्रण करते हुए उसके आँसुओं की अनेक कल्पनायें की हैं। कवि ने कहीं तो आँसुओं को मकरंद के समान कहा है तो कहीं पर मोती तो कहीं पर विद्युत्कण।

श्यामल अंचल धरणी का
भर मुक्ता आँसू कन से
छूछा बादल बन आया
मैं प्रेम प्रभात गगन से।[७३]

इन पंक्तियों में कवि ने आँसुओं की कल्पना ओस की बूँदों के रूप में और अपनी स्थिति की कल्पना छूछे बादल के रूप में की है। जैसे सब कुछ लुट जाने पर बादल छूँछा हो जाता है ठीक वैसे ही कवि अपनी स्थिति की कल्पना करता है।

चढ़ जाय अनन्त गगन पर
वेदना जलद की माला
रवि तीव्र ताप न जलाये
हिमकर का हो न उजाला।[७४]

इस उदाहरण में भी वायवी कल्पना ही दिखायी देती है। कवि को केवल पीड़ा के ही दर्शन हुए हैं। इसलिए अब वह कल्पना करता है यह पीड़ा रूपी बादलों की माला इस असीम आकाश पर पहुँचकर फैल जाये जहाँ पर न तो उस पर सूर्य के प्रकाश का कोई प्रभाव हो और न ही चन्द्रमा की किरणें ही उसको सताये।

जल उठते हैं लघु जीवन के मधुर-मधुर वे पल हलके,
मुक्त उदास गगन के उर में छाले बन कर जा झलके।[७५]

श्रद्धा को अपने बीते हुए सुखमय क्षणों की याद आती है तो उसका हृदय तीव्र वेदना से जलने लगता है। कवि कल्पना करता है मानों वह बीते हुए सुखमय क्षण ही आज विरह के कारण जल उठे हैं। आकाश में चमकते हुए तारों को देखकर कल्पना करता है मानों सुखमय क्षणों के जलने के कारण आकाश के हृदय में फफोले पड़ गये हैं जो तारों के रूप में झलक रहे हैं।

जगद्वन्द्यों के परिणय की
है सुरभिमयी जयमाला
किरणों के केसर रज से
भव भर दो मेरी ज्वाला।[७६]

यहाँ पर कवि वेदना की कल्पना जयमाला के रूप में करता है । उसके अनुसार जिस तरह जयमाला पहनने पर वर और वधू एक होते हुए विवाह के पवित्र बन्धन में बँध जाते हैं उसी प्रकार से हे वेदने ! तुम भी अपनी किरणों के केसर रज से सम्पूर्ण संसार को भर दो अर्थात् तुम हर प्राणी के हृदय में बस जाओ ताकि प्राणी प्रेम भावना से ओत- प्रोत हो जायें ।

(४) कलापक्ष से सम्बंधित कल्पना :

प्रसाद जी ने कला विधान में भी कल्पना का प्रयोग किया है । कल्पना के सहारे ही वह अलंकार, छन्द और शब्दों की सुन्दर योजना कर पाने में सफल हो पाए हैं ।

अप्रस्तुत विधान :

प्रसाद जी ने अपने काव्य में विभिन्न प्रकार के अलंकारों का प्रयोग किया है । उन्हें अलंकारवादी कवि तो नहीं कह सकते परन्तु फिर भी इनके काव्य में अलंकारों की सुन्दर छटा देखने को मिलती है ।

कल्पना ही वस्तु, भाव और अनुभूति के लिए विभिन्न प्रकार के उपमान खोजकर लाती है और कवि उन्हें विभिन्न अलंकारों के रूप में अभिव्यक्त करता है ।

उपमा(मूर्तामूर्त विधान)

मूर्त के लिए मूर्त उपमान

उधर गरजतीं सिन्धु लहरियाँ
कुटिल काल के जालों-सी ;
चली आ रहीं फेन उगलती
फन फैलाये व्यालों-सी ।[७७]

\+ \+ \+

काला-पानी वेला सी
है अंजन - रेखा काली ।[७८]

पहले उदाहरण में कवि ने लहरों को कुटिल काल के जाल और व्यालों के समान और द्वितीय उदाहरण में काजल की काली रेखा को काले जल वाले सागर के किनारे के समान बताया है । अत: इन दोनों उदाहरणों में मूर्त की मूर्त से उपमा दी गई है ।

मूर्त के लिए अमूर्त उपमान

उषा सुनहले तीर बरसाती
जय-लक्ष्मी सी उदित हुई ।[७६]

+ + +

कूते थे मनु और कण्टकित
होती थी वह बेली,
स्वस्थ व्यथा की लहरों- सी
जो अंग लता थी फैली ।[८०]

पहले उदाहरण में उषा के लिए जयलक्ष्मी और दूसरे उदाहरण में श्रद्धा के शरीर के लिए व्यथा की लहरों जैसे उपमान प्रयुक्त हुए हैं ।

अमूर्त के लिए मूर्त उपमान

जीवन की जटिल समस्या
है बढ़ी जटा सी कैसी ।[८१]

+ + +

क्यों व्यथित व्योम- गंगा सी
छिटका कर दोनों छोरें
चेतना - तरंगिनि मेरी
लेती हैं मृदुल हिलोरें ।[८२]

पहले उदाहरण में जीवन की जटिल समस्याओं को जटाओं के समान और द्वितीय उदाहरण में पीड़ा को आकाश गंगा की तरह कहा है । अतः दोनों उदाहरणों में अमूर्त के लिए अमूर्त उपमानों का प्रयोग किया गया है ।

अमूर्त के लिए अमूर्त उपमान

अन्धकार के अट्टहास सी ;
मुखरित सतत चिरन्तन सत्य ।[८३]
+ + +
निकल रही थी मर्म वेदना,
करुणा विकल कहानी- सी ।[८४]

प्रथम उदाहरण में मृत्यु को 'अन्धकार के अट्टहास' जैसा और द्वितीय उदाहरण में मर्म वेदना को करुणा विकल कहानी के समान बताया गया है । दोनों में अमूर्त के लिए अमूर्त उपमानों की योजना की गयी है ।

रूपक :

तिरती थी तिमिर उदधि में
नाविक । यह मेरी तरणी
मुख चन्द्र किरण से खिंचकर
आती समीप हो धरणी ।[८५]

प्रसाद जी ने पाश्चात्य अलंकार जैसे - मानवीकरण, विशेषण विपर्यय और ध्वन्यर्थ व्यंजना आदि अलंकारों का प्रयोग भी अपने काव्य में किया है। इनके उदाहरण देखिए -

टक लाइ सबै दृग फूलन ते, मकरन्द-भरे अँसुँवा कन ते।
तुम देखति हो केहि आस-भरी, नहि बोलति हो तरुणास खरी।[८६]

फूलों से लदी हुई लता वृक्ष से लिपटी हुई है। फूल भी मकरन्द से पूर्णतया ओतप्रोत है। पवन भी नहीं चल रहा है। मानस में उस रमणी का चित्र उभर आता है जो अपने प्रियतम के समीप चुपचाप खड़ी हुई है तथा अपने प्रियतम को कुछ कहने का साहस नहीं जुटा पा रही है। बस आशान्वित होकर आँसुओं से भरे हुए नयनों से अपने प्रियतम को देख रही है।

इसी प्रकार से प्रसाद जी ने पृथ्वी की कल्पना नारी रूप में की है। कवि कल्पना करता है नीला आकाश मानों नारी के केश हैं जो कि प्रलय के कारण बिखर गये हैं —

बुलबुले सिन्धे के फूटे
नक्षत्र- ~~मुक्त--कुन्तल-कान्ति~~ मालिका टूटी
नभ-मुक्त- कुन्तला धरणी
दिखलाई देती लूटी।[८७]

रात्रि की कल्पना शुक्लाभिसारिका नायिका के रूप में की है —

किस दिगन्त रेखा में इतनी
  संचित कर सिसकी-सी साँस
यों समीर मिस हाँफ रही -सी
  चली जा रही किसके पास।[८८]

हिमालय को राजा के रूप में कल्पना भी की गयी है —

शिला- सन्धियों में टकरा कर
पवन भर रहा था गुंजार,
उस दुर्भेद्य अचल दृढ़ता का
करता चारण सदृश प्रचार ।[८६]

विशेषण विपर्यय :

निकल रही थी मर्म वेदना,
करुणा विकल कहानी-सी ।[६०]

कहानी कभी करुणा से विकल नहीं होती बल्कि कहानी कहने या सुनने वाला कहानी सुनकर या पढ़कर व्याकुल होता है । इसी कारण इन पंक्तियों में विशेषण विपर्यय अलंकार है ।

नेत्र निमीलन करती मानो
प्रकृति प्रबुद्ध लगी होने ;
जलधि लहरियों की अँगड़ाई
बार- बार जाती सोने ।[६१]

प्रस्तुत उदाहरण में अँगड़ाई के बार- बार सोने में विशेषण विपर्यय अलंकार है । कारण अंगडाई कभी नहीं सोती अपितु अंगड़ाई को लेने वाला सोता है ।

ध्वन्यर्थ व्यंजना :

इस करुणा कलित हृदय में
अब विकल रागिनी बजती

क्यों हाहाकार स्वरों में
वेदना असीम गरजती ?[६२]

\+ + +

साथ ले सहचर सरस वसन्त,
चंक्रमण करता मधुर दिगंत,
गूँजता किलकारी निस्वन,
पुलक उठता तब मलय- पवन ।[६३]

\+ + +

उज्ज्वल गाथा कैसे गाऊँ मधुर चाँदनी रातों की ।
अरे खिलखिला कर हँसते होने वाली उन बातों की ।[६४]

\+ + +

नैक नरखहु विचार पथिक अरू विरही जन कौ ।
गरज न जानत, तेहि रहत है धुन गरजन कौ ।।[६५]

प्रस्तुत उदाहरण में `हाहाकार`, `गरजती`, `किलकारी`, `खिलखिला`, `गरजन` आदि शब्दों के द्वारा ही अमूक वस्तु का चित्र मानस में उभर आता है ।

प्रतीक विधान :

उस पार कहाँ फिर जाऊँ
तम के मलीन अंचल में
जीवन का लोभ नहीं, वह
वेदना छद्म मय छल में ।[६६]

तम निराशा का प्रतीक है ।

सूनी कुटिया कोने में
रजनी भर जलते जाना
लघु स्नेह भरे दीपक का
देखा है फिर बुझ जाना ।[६७]

'सूनी कुटिया' उजड़े हृदय का, 'रजनी' निराशा का इसी प्रकार 'दीपक' आत्मा और 'स्नेह' प्रेम का प्रतीक है ।

खेल रही सुख-सरवर में तरी पवन अनुकूल लिये
सम्मोहन वंशी बजती थी नव तमाल के कुंजों में ।[९८]

इस उदाहरण में 'तरी' जीवन का 'पवन' जीवन की अनुकूल परिस्थितियों का और 'सम्मोहन वंशी' प्रसन्नता का प्रतीक है ।

वसुधा के अंचल पर
यह क्या कन-कन सा गया बिखर ?
जल -शिशु की चंचल क्रीड़ा-सा,
जैसे सरसिज दल पर ।[९९]

इन पंक्तियों में ओस कण मानव जीवन का प्रतीक है ।

शब्द योजना :

प्रसाद जी कल्पना के सहारे ही शब्दों की सुन्दर योजना कर पाने में सफल हो पाये हैं । उन्होंने उर्दू, अंग्रेजी, फारसी आदि शब्दों का भी अपने काव्य में कहीं- कहीं प्रयोग किया है । उदाहरण के लिए कुछ शब्द देखिए - जैसे - जहान, दरबार, मौज, म्यान, हरदम, बदनाम, नौबत खाने, हरम, हुक्म, हुजूर, पाईबाग, सिपारस(सिफारिश), खुसामदी(खुशामदी), परदा, दाग, घायल, नोक, तीर, अरमान, वार इत्यादि ।

स्पर्श, ध्वनि और गंध के आधार पर भी शब्दों का प्रयोग किया है -

स्पर्श के आधार पर :

शीत पवन के मधुर स्पर्श से सिहर उठा करती थी जो
श्यामा का संगीत नवीन सकम्प सुना करती थी जो ।[१००]

ध्वनि के आधार पर :

तरंग तरल चलत चपल लेत हिलोर अपार ।
कूलन सो मिलि करै खिलि -खिलि तटन विस्तृत धार ।। [१०१]

गंध कोआधार पर :

शत शतदलों की
मुद्रित मधुर गंध भीनी- भीनी रोम में
बहाती लावण्य धारा । [१०२]

छन्द योजना :

प्रसाद जी ने कल्पना के सहारे ही हिन्दी के परंपरागत छन्दों की मात्राओं में परिवर्तन करके नवीन छन्दों का निर्माण किया है । इसके अतिरिक्त कुछ छन्द ऐसे भी हैं जो कि पूर्ण रूप से इन्हीं की मौलिक सृष्टि है ।

पादाकुलक और पद्धरि का मिश्रण करके प्रसाद जी ने एक नवीन मिश्रित छन्द की सृष्टि की है —

वह चंद्रहीन थी एक रात,	पद्धरि
जिसमें सोया था स्वच्छ प्रात: ;	
उजले-उजले तारक झलमल,	पादाकुलक
प्रतिबिंबित सरिता वक्ष स्थल,	
धारा वह जाती बिंब अटल,	
खुलता था धीरे पवन-पटल,	
चुपचाप खड़ी थी वृक्ष पाँत,	पद्धरि
सुनती जैसे कुछ निजी बात । [१०३]	

प्रसाद जी ने `रहस्यसर्ग` में ताटंक छन्द में थोड़ा सा परिवर्तन करके एक नवीन रूप प्रदान किया है। उन्होंने ताटंक छन्द के अंत में एक गुरू (S) और जोड़ दिया है। १६-१६ की यति से ३२ मात्राओं का यह छन्द नवीन ही है।-

उर्ध्व देश उस नील तमस में
स्तब्ध हो रही अटल हिमानी ;
पथ थक कर है लीन, चतुर्दिक
देख रहा वह गिरि अभिमानी।[१०४]

`कामायनी` के `आनन्द सर्ग` में कवि ने आँसू अथवा आनन्द छंद का प्रयोग किया है। इसमें कुल २८ मात्रायें होती हैं। १४-१४ मात्राओं के बाद यति होती है। `आँसू` काव्य में भी इसी छन्द का प्रयोग किया गया है –

मैं बल खाता जाता था
मोहित बेसुध बलिहारी
अन्तर के तार खिंचे थे
तीखी थी तान हमारी।[१०५]

इस प्रकार से विभिन्न कल्पनाओं की सुन्दर छटा को देखते हुए कह सकते हैं कि प्रसाद जी ने अपने काव्य में कल्पना तत्व को विशेष महत्व प्रदान किया है। उनकी महान कृति `कामायनी` में तो कल्पना को असामान्य महत्व दिया गया है।

सन्दर्भ :

१- डॉ० रामेश्वरलाल खण्डेलवाल : जयशंकर `प्रसाद` वस्तु और कला, पृ० ३२६

२- प्रसाद, काव्य और कला तथा अन्य निबंध, पृ० १२१

३- प्रसाद, चित्राधार, पृ० १४१-१४२

४- प्रसाद, कानन-कुसुम, पृ० १८

५- प्रसाद : प्रेमपथिक, पृ० १३

६- प्रसाद, स्कन्दगुप्त, पृ० २५

७- प्रसाद, कामायनी, आमुख, पृ० १४

८- वही, पृ० ४५

९- डॉ० कुमार विमल, छायावाद का सौंदर्यशास्त्रीय अध्ययन, पृ० १३५

१०- प्रसाद, लहर, पृ० २३-२४

११- वही, पृ० २९

१२- डॉ० शान्तिस्वरूप गुप्त, कल्पना तत्व पृ० ९० से उद्धृत ।

१३- प्रसाद, लहर, पृ० १२

१४- वही, पृ० ५२-५३

१५- डॉ० शान्तिस्वरूप गुप्त: कल्पना तत्व, पृ० ९० से उद्धृत ।

१६- वही, पृ० १२९

१७- प्रसाद, आँसू, पृ० २६

१८- प्रसाद, कामायनी, पृ० ३८

१९- प्रसाद, लहर, पृ० २७

२०- प्रसाद, आँसू, पृ० १९

२१- प्रसाद, कामायनी, पृ० १०२

२२- प्रसाद, झरना, पृ० २६

२३- डॉ० शान्तिस्वरूप गुप्त, कल्पना तत्व, पृ० १३०

२४- प्रसाद : आँसू, पृ० २४
२५- वही : पृ० १६
२६- प्रसाद, कामायनी, पृ० ४७
२७- वही, पृ० १०६
२८- वही, पृ० २३२
२६- प्रसाद, लहर, पृ० २२
३०- प्रसाद, आँसू, पृ० ६६
३१- वही, पृ० ७६
३२- प्रसाद, कामायनी, पृ० ३४
३३- प्रसाद, आँसू, पृ० २७
३४- प्रसाद, कामायनी, पृ० २६१
३५- वही, पृ० १६२
३६- प्रसाद, लहर, पृ० २१
३७- वही, पृ० २२
३८- प्रसाद, कामायनी, पृ० २६२
३६- वही, पृ० ८४
४०- वही, पृ० ४६
४१- वही, पृ० ४७
४२- वही, पृ० ६७
४३- प्रसाद, कानन-कुसुम, पृ० २५
४४- प्रसाद, कामायनी, पृ० ३६
४५- वही, पृ० २६१
४६- प्रसाद, लहर, पृ० २२
४७- वही, पृ० २७

४८- प्रसाद, झरना, पृ० ४६

४९- प्रसाद, लहर, पृ० २६

५०- वही, पृ० २६

५१- प्रसाद, महाराणा का महत्व, पृ० ४

५२- प्रसाद : लहर, पृ० ३६

५३- वही, पृ० ३६

५४- प्रसाद, आँसू, पृ० ७४

५५- प्रसाद, लहर, पृ० १८

५६- वही, पृ० ३१

५७- वही, पृ० १०

५८- वही, पृ० ४०

५९- वही, पृ० ४०

६०- प्रसाद, झरना, पृ० ७०

६१- प्रसाद, कामायनी, पृ० ७१

६२- प्रसाद, आँसू, पृ० १०

६३- वही, पृ० ९

६४- वही, पृ० १४

६५- वही, पृ० ३२

६६- वही, पृ० ८

६७- प्रसाद, कामायनी, पृ० ५२

६८- वही, पृ० ५३

६९- वही, पृ० ५३

७०- वही, पृ० ५३

७१- प्रसाद, आँसू, पृ० ११

७२- प्रसाद, कामायनी, पृ० ७८
७३- प्रसाद, आँसू, पृ० ३२
७४- वही, पृ० ५१
७५- प्रसाद, कामायनी, पृ० ७६
७६- प्रसाद, आँसू, पृ० ६२
७७- प्रसाद, कामायनी, पृ० २५
७८- प्रसाद, आँसू, पृ० २२
७९- प्रसाद, कामायनी, पृ० ३३
८०- वही, पृ० १२३
८१- प्रसाद, आँसू, पृ० १४
८२- वही, पृ० ८
८३- प्रसाद, कामायनी, पृ० २८
८४- वही, पृ० १६
८५- प्रसाद : आँसू, पृ० ४१
८६- प्रसाद, चित्राधार, पृ० १५२
८७- प्रसाद, आँसू, पृ० १०
८८- प्रसाद, कामायनी, पृ० ४६
८९- वही, पृ० ३९
९०- वही, पृ० १६
९१- वही, पृ० ३४
९२- प्रसाद, आँसू, पृ० ७
९३- प्रसाद, लहर, पृ० २५
९४- वही, पृ० ११

९५- प्रसाद : चित्राधार, पृ० १६१

९६- प्रसाद : आँसू, पृ० ४०

९७- वही : पृ० ७९

९८- प्रसाद : प्रेमपथिक, पृ० १६

९९- प्रसाद : लहर, पृ० ३२

१००- प्रसाद : कानन-कुसुम, पृ० ५५

१०१- प्रसाद, चित्राधार, पृ० १५२

१०२- प्रसाद : लहर, पृ० ६०

१०३- प्रसाद : कामायनी, पृ० १०७

१०४- वही, पृ० २३७

१०५- प्रसाद : आँसू, पृ० १५